कितनी कारगर होगी नई दवा मूल्य नीति?

एस. श्रीनिवासन

राष्ट्रीय दवा मूल्य नीति (एनपीपीपी-2011) के मसौदे में कहा गया है कि उन सभी 348 दवाइयों के दामों को मूल्य नियंत्रण के तहत लाया जाएगा, जिन्हें नवीन राष्ट्रीय ज़रूरी दवा सूची (एनएलईएम-2011) में ज़रूरी दवाइयां घोषित किया गया है। तमाम दवाइयों को बाज़ार के हवाले छोड़ने के बजाय उनमें से कुछ को ज़रूरी मानने की इस पहल का स्वागत किया जाना चाहिए। हालांकि इस नीति में अब भी गैर-ज़रूरी और बेतुकी दवाइयों के सम्बंध में बहुत कुछ किए जाने की ज़रूरत है। इस सूची के प्रकाशन ने राष्ट्रीय ज़रूरी दवा सूची से बाहर रखी गई कई दवाइयों की अधिकतम कीमतों की गणना के काम को भी असंभव नहीं तो कठिन तो बना ही दिया है।

एनएलईएम-2011 में घोषित दवाइयों के अलावा आईएमएस में वर्णित सर्वाधिक बिक्री वाली 300 दवाइयों को भी इसके दायरे में लाया जा सकता था। मसौदा नीति में फॉर्मूलों की अधिकतम कीमतों को थोक दवाइयों की कीमतों से अलग किया गया है। नीति के मसौदे में थोक दवाइयों पर से मूल्य नियंत्रण प्रणाली को हटाने का तर्क बेमतलब है। सरकार को कंपनियों का कार्टल बनने अथवा दामों में असामान्य बढ़ोतरी की स्थिति में थोक दवाइयों की कीमतों पर नियंत्रण का विकल्प खुला रखना चाहिए। भविष्य में इसका परिणाम किसी ज़रूरी दवाई के फॉर्मूले की कमी के रूप में सामने आ सकता है। इससे भी बदतर परिणाम यह हो सकता है कि शायद थोक दवाइयां या फॉर्मूले देश में उपलब्ध ही न हों।

कीमतों में संशोधन के लिए थोक मूल्य सूचकांक का इस्तेमाल करना बहुत अच्छा विचार नहीं माना जा सकता। इससे अधिकतम कीमतों में हर साल अपने आप बढ़ोतरी का एक तत्त्व जुड़ जाएगा। वर्ष 2010-11 के लिए थोक मूल्य सूचकांक 143.3 है (वर्ष 2004-05 के आधार वर्ष में थोक मूल्य सूचकांक को 100 मानते हुए)। इस दौरान अधिकांश दवाइयों की कीमतों में 43 फीसदी की बढ़ोतरी नहीं हुई है। बेहतर होता कि किसी दवाई के फॉर्मूले की अधिकतम कीमत को सम्बंधित थोक दवाई की कीमत में उस साल हुई बढ़ोतरी से सीधे जोड़ा जाता।

बाज़ार आधारित मूल्य निर्धारण पर पूरी तरह से निर्भरता के लिए यह दलील इस तथ्य के मद्देनज़र खोखली नज़र आती है कि बाज़ार में एक ही तरह के फॉर्मूलों वाली दवाइयां अलग-अलग कीमतों में मिलती हैं और नुस्खा लिखने वाला चिकित्सक महंगी दवाइयों के प्रति ही आकर्षित होता है। तब रोगी को मजबूर होकर महंगी दवा खरीदनी पड़ती है। विडंबना यह है कि साबुन या कार के वितरित दवाइयों में ब्रांड लीडर ही कीमतों में भी सबसे ऊपर है।

मसौदे का मुख्य पैराग्राफ 4.7 कहता है, "अधिकतम कीमत तीन शीर्ष ब्रांड के औसत मूल्य के आधार पर तय की जाएगी।" इस औसत मूल्य का मतलब है कि अगर तीनों शीर्ष ब्रांड बहुत महंगे हुए, तो कीमतें उनके आधार पर तय होंगी और इस तरह से ऊंची कीमतों को वैधता हासिल हो जाएगी। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो बहुत अधिक बिकने वाला ब्रांड महंगा ही होगा।

दवा बाज़ार में उपभोक्ता और दवा लिखने वाले चिकित्सक/निर्माता के बीच असंतुलन की स्थिति है। तब औसत मूल्य के आधार पर मूल्य निर्धारण के मायने यह भी होंगे कि ऊंची कीमतों और अत्यधिक मुनाफाखोरी के बावजूद यदि बाज़ार उन्हें 'स्वीकार' लेता है तो उन्हें ठीक माना जाएगा। इस प्रक्रिया में मरीज़ गरीब से और गरीब होता है, तो होता रहे! यह उस धारणा को भी वैधता प्रदान करता है कि दवाई जितनी महंगी होगी, वह उतनी ही अच्छी होगी। उदाहरण के लिए अगर अल्बेन्डेज़ोल की एक गोली 12-13 रुपए में आती है तो ठीक ही कहा जाएगा।

अधिकतम कीमतों का सम्बंध कम से कम कच्चे माल की लागत से तो जोड़ा ही जाना चाहिए। औसत मूल्य

फॉर्मूले में अन्य इनपुट की लागत तो छोड़िए, कच्चे माल की लागत से भी किसी दवाई की कीमत का कोई लेना-देना नहीं होगा। कुछ ज़रूरी दवाओं का अधिकतम खुदरा मूल्य उनमें इस्तेमाल किए जाने वाले कच्चे माल से 3000 से 5000 प्रतिशत ज़्यादा होता है। क्या किसी सरकार को इतनी अधिक मुनाफाखोरी की वैधता प्रदान करनी चाहिए? अनेक दवा विक्रेता दवाइयों के सस्ते संस्करण नहीं रखते, क्योंकि उनमें ज़्यादा मार्जिन नहीं होता। इसका नतीजा यह होगा कि सभी सस्ते दाम वाले ब्रांड अधिकतम कीमतों की तरफ जाएंगे।

नीति का मसौदा अमानक दवाइयों को हतोत्साहित करने का फॉर्मूला देता है। इसी तरह की सोच ज़रूरी दवा सूची से बाहर की बेतुकी और अवैज्ञानिक दवाइयों को हतोत्साहित करने के मामले में भी अपनाई जा सकती थी। बेतुके मिश्रणों को हतोत्साहित करने और अधिकतम कीमतों की समस्या से बचने के लिए प्रणब सेन कार्यबल की रिपोर्ट का सहारा लिया जा सकता है। इस रिपोर्ट में कहा गया है, "किसी फॉर्मूले में कोई एक दवाई ज़रूरी दवा की सूची की हो और दूसरी दवाई अन्य श्रेणी की हो तो उस पर ज़रूरी दवाइयों वाली अधिकतम कीमत लागू होगी।" बिक्री कर और उत्पाद शुल्क सूची से बाहर की दवाइयों के लिए ज़्यादा और सूची में शामिल दवाइयों के लिए शून्य हो सकते हैं। प्रणब सेन समिति की इस अनुशंसा को भी मसौदा नीति में शामिल किया जा सकता है कि जेनेरिक दवाइयों के बीच समुचित प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने के लिए सभी दवाइयों के ब्रांड नाम हटा दिए जाने चाहिए।

मसौदा नीति में कुछ मामलों में छूट दी गई है, लेकिन वे समझ से परे हैं। प्रति इकाई तीन रुपए मूल्य तक की दवाइयों को छूट देने का प्रस्ताव दिया गया है। एक तरह से यह दवा निर्माताओं को 10-20 पैसे प्रति इकाई लागत वाली दवाइयों को महंगी करके तीन रुपए के आसपास करने के लिए प्रोत्साहन देगा। उदाहरण के लिए सिट्राज़िन को लिया जा सकता है। इसकी एक गोली की लागत 15 पैसे से भी कम आती है, लेकिन इसके महंगे ब्रांड करीब तीन रुपए में उपलब्ध हैं। इसी तरह, ऑयरन- फोलिक एसिड गोलियों की प्रति गोली लागत महज़ 10 पैसे आती है। क्या इसे तीन रुपए में बेचने की अनुमति दी जानी चाहिए?

तो एक बेहतर मूल्य नीति क्या होनी चाहिए? नीति ऐसी होनी चाहिए कि जिन दवाओं के दाम बहुत अधिक हैं, वे कम हो सकें, दवा के उत्पादन की वास्तविक लागत और इस तरह कच्चे माल की लागत से कीमतों का सम्बंध हो और वह दवाइयों की अत्यंत ऊंची कीमतों को वैधता प्रदान न करे। आम तौर पर देखने में आता है कि सर्वाधिक बिक्री वाली दवाओं की कीमतों में कमी बस दिखावे के लिए ही की जाती है।

एक अच्छी शुरुआत के लिए यह किया जा सकता हैः बेहतर संचालित सार्वजनिक खरीद प्रणाली की कीमतों को संदर्भ कीमत के रूप में ले लिया जाए और उससे कुछ गुना ज़्यादा (4-6 गुना ज़्यादा) को अधिकतम मूल्य सीमा मान लिया जाए। मौजूदा औसत मूल्य प्रणाली में अधिकतम मान्य कीमत सार्वजनिक खरीद प्रणाली की तुलना में 20-70 गुना अधिक होंगी।

इस मसौदा नीति को देखकर तो यही प्रतीत होता है कि यह उच्चतम न्यायालय के मार्च 2003 और अक्टूबर 2011 के आदेशों के पालन का दिखावा करने के लिए लाई जा रही है। लेकिन इससे 'बड़े खिलाड़ियों' की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ेगा। यह ऐसी नीति है जो दिखावा तो ज़्यादा करती है, लेकिन असल में करती कुछ नहीं, बिलकुल भौंकने वाले कुत्ते की तरह! ***(स्रोत फीचर्स)***

2011 सहित स्रोत सजिल्द उपलब्ध है

मूल्य 200 रुपए